इकाई 15 नीतिशतकम् – श्लोक 1-10

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 काव्यांश की व्याख्या

- 15.2.1 मंगलाचरण
- 15.2.2 सदुक्ति की स्थिति
- 15.2.3 मूर्ख की दुराराध्यता
- 15.2.4 मूर्खों का गुण
- 15.2.5 अल्पज्ञता की भयंकरता
- 15.2.6 क्षुद्र प्राणी की अज्ञानता
- 15.2.7 विवेकहीन लोगों का पतन

15.3 सारांश

15.4 शब्दावली

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भर्तृहरि के काव्य-सौष्ठव को समझ सकेंगे।
- विद्वान् और मूर्ख के मध्य अन्तर को समझ सकेंगे।
- विद्या से रहित व्यक्ति की भयंकरता को जान सकेंगे।
- विद्या विहीन को प्रसन्न करना कितना कठिन है, यह जान सकेंगे।
- विद्या के महत्त्व को जान सकेंगे।
- सुन्दर सूक्तियों के प्रभाव को पहचान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने भर्तृहरि के जीवन-वृत्त को जाना । आप यह जानते हैं कि भर्तृहरि महान् कवि, दार्शनिक और भाषातत्त्ववेत्ता थे, उन्होंने तीन शतकों की रचना की है। जो नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक नाम से प्रसिद्ध हैं। नीतिशतक के प्रारम्भिक 20 पद्य आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। प्रस्तुत इकाई में आप नीतिशतक के प्रथम दस पद्यों का अध्ययन करेंगे।

नीतिशतक का तात्पर्य है नीति विषयक 100 पद्य। इस शतक में कुल 111 पद्य हैं, जिनमें भर्तृहरि ने नीतिविषयक अनेक विषयों की चर्चा की है। इन श्लोकों के अध्ययन से यह ज्ञात

होता है कि समस्त पद्यों में निबद्ध विषय उनके जीवन का अनुभूत सत्य है। समाज के विभिन्न विषयों का आलोचन कर भर्तृहरि ने विद्वान् को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि विद्वान् राजा से भी बढ़कर है तथा विद्या से बड़ी कोई भी सम्पत्ति नहीं है। भर्तृहरि के नीतिशतक को संस्कृत के विद्वानों ने ग्यारह पद्धतियों में विभक्त किया है – ब्रह्म की स्तुति, मूर्खपद्धति, विद्वत्पद्धति, मान-शौर्यपद्धति, अर्थपद्धति, दुर्जनपद्धति, सुजनपद्धति, परोपकारपद्धति, धैर्यपद्धति, दैवपद्धति तथा कर्मपद्धति। इस इकाई में मूर्खपद्धति के 10 पद्यों की व्याख्या की जा रही है। इन्हें पढ़कर आप जीवन के अनेक पक्षों का अनुभव प्राप्त करेंगे।

भर्तृहरि के उक्त पद्य उनके अनुभवों से प्रसूत हैं। उन्होंने विद्वान् और मूर्ख के बीच के अन्तर को रेखांकित करते हुये, इन पद्यों में विद्वान् की महत्ता को प्रतिपादित किया है।

15.2 काव्यांश की व्याख्या

15.2.1 मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।1।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कवि अपने ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये परब्रह्म परमेश्वर की वन्दना करता हुआ, उसे नमस्कार करता है। ग्रन्थ के आदि में किया गया मंगलाचरण पाठकों, व्याख्याकारों तथा शिष्य परम्परा का कल्याण कारक होता है। अतः कविवर भर्तृहरि ने सर्वप्रथम परमेश्वर की स्तुति को उपस्थापित किया है।

अन्वयः – दिक्कालाद्यनवच्छिन्न–अनन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः।

शब्दार्थ – दिक्काल = पूर्व आदि दिशायें तथा भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल, अनवच्छिन्न = जिसे मापा न जा सके, अनन्त = अन्त रहित, चिन्मात्रमूर्तये = चैतन्य विग्रह वाले, स्वानुभूत्येकमानाय = अनुभव मात्र से गम्य, शान्ताय = शान्त स्वरूप, तेजसे = ज्योति स्वरूप युक्त, नमः = नमस्कार है।

सन्धि –
- **दिक्कालादि** – दिक्काल + आदि (दीर्घ सन्धि)
- **अनवच्छिन्नानन्त** – अनवच्छिन्न + अनन्त (दीर्घ सन्धि)
- **चिन्मात्र** – चित् + मात्र (हल् अनुनासिक सन्धि)
- **अनुभूत्येकमानाय** – अनुभूति + एकमानाय (यण् सन्धि)

समास –

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये – दिक् च कालः च, दिक्कालौ (द्वन्द्व समास), दिक्कालौ आदी येषां ते, दिक्कालादयः (बहुव्रीहि समास), दिक्कालादिभिः अनवच्छिन्नं, दिक्कालाद्यनवच्छिन्नम् (तृतीया तत्पुरुष समास), दिक्कालाद्यनवच्छिन्नम् अनन्तं चिन्मात्रमूर्तिः यस्य सः दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तिः, (बहुव्रीहि समास) तस्मै।

स्वानुभूत्येकमानाय – स्वस्य अनुभूतिः, स्वानुभूतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वानुभूतिः एव एकं मानं यस्य तत्, स्वानुभूत्येकमानम् (बहुव्रीहि समास), तस्मै।

अनुवाद – पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दस दिशाओं तथा भूत, भविष्य और वर्तमान रूप तीनों कालों से जो मापा नहीं जा सकता, जो अन्त रहित है, चैतन्य स्वरूप है तथा जो अपने अनुभव मात्र से जाना जा सकता है, उस शान्त, तेजस्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षणम् – श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् या श्लोक के प्रत्येक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

विशेष – भारतवर्ष में किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व अपने इष्ट देव की आराधना करने की परम्परा है। इस आराधना को मंगलाचरण कहते हैं। यह मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है – नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने सर्वव्यापक परमेश्वर को नमस्कार करके नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है।

15.2.2 सदुक्ति की स्थिति

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।2।।

प्रसंग – समाज में विद्वानों की मत्सरग्रस्तता तथा राजाओं की अहंकारग्रस्तता को देखते हुये कवि का मानना है कि सुकवि की उक्तियाँ उसके हृदय में ही नष्ट हो जायें। ईर्ष्याग्रस्त होने के कारण विद्वान् उसे सुनेंगे नहीं। गर्वान्वित होने के कारण राजा उसका सम्मान नहीं करेगा तथा सामान्य जन अबोध ग्रस्त होने के कारण उसे समझने में समर्थ नहीं है।

अन्वयः – बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः। अन्ये च अबोधोपहताः (सन्ति अतः) सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

शब्दार्थ – बोद्धारः = परिज्ञाता विद्वान्, मत्सरग्रस्ताः = मात्सर्य से ग्रस्त, प्रभवः = राजा गण, स्मयदूषिताः = गर्व से दूषित हैं। अन्ये च = इन दोनों से अतिरिक्त लोग, अबोधोपहताः = अज्ञान से उपहत, सुभाषितम् = सदुक्ति, अङ्गे = मुख में, जीर्णम् = नष्ट हो गई।

सन्धि –

अबोधोपहताः – अबोध + उपहताः (गुण सन्धि)

चान्ये – च + अन्ये (दीर्घ सन्धि)

समास –

मत्सरग्रस्ताः – मत्सरेण ग्रस्ताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

स्मयदूषिताः – स्मयेन दूषिताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अबोधः – न बोधः (नञ् तत्पुरुष समास)

अबोधोपहताः – अबोधेन उपहताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद – कवि के सुभाषित वचनों का कोई भी व्यक्ति सच्चा पारखी नहीं है, क्योंकि विद्वद्वर्ग ईर्ष्याग्रस्त हैं तथा नृपवृन्द गर्व से मत्त हैं और अन्य साधारण शिक्षित लोग अज्ञान

से दबे हुए हैं। अतः सुभाषित आज तक कवि के हृदय में ही रह गया, उसे बाहर निकलने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

15.2.3 मूर्ख की दुराराध्यता

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति।।3।।

प्रसंग – महाकवि भर्तृहरि अज्ञानी, विशेषज्ञ तथा मूर्ख में अन्तर बताते हुये कहते हैं कि इन तीनों में स्वल्प ज्ञान से अहंकृत मूर्ख सबसे भयंकर होता है तथा उसे ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

अन्वयः – अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते ब्रह्मा अपि ज्ञानलवदुर्विदग्धं नरं न रञ्जयति।

शब्दार्थ – अज्ञः = अज्ञानी, सुखम् = कुछ प्रयास से, आराध्यः = प्रसन्न करने योग्य, विशेषज्ञः = ज्ञानी, सुखतरम् = बिना किसी प्रयास के, आराध्यते = सन्तुष्ट किया जा सकता है, ब्रह्मापि = ब्रह्मा भी, ज्ञानलवदुर्विदग्धम् = अल्प ज्ञान वाले, नरम् = पुरुष को, न रंजयति = प्रसन्न नहीं कर सकता।

सन्धि – **ब्रह्मापि** – ब्रह्मा + अपि (दीर्घ सन्धि)

समास – **अज्ञः** – न ज्ञः अज्ञः (नञ् तत्पुरुष समास)
विशेषज्ञः – विशेषं जानाति इति विशेषज्ञः (उपपद तत्पुरुष समास)
ज्ञानलवदुर्विदग्धम् – ज्ञानस्य लवः ज्ञानलवः (षष्ठी तत्पुरुष समास)
ज्ञानलवेन दुर्विदग्धम् (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद – अज्ञानी मनुष्य को कुछ प्रयास करके प्रसन्न किया जा सकता है। विशिष्ट विद्वान् को बिना किसी प्रयास के प्रसन्न किया जा सकता है। किन्तु अल्पज्ञान से भयंकर व्यक्ति को स्वयं ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकते।

छन्द – आर्या।

लक्षणम् – यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम पाद में 12 मात्रायें होती हैं, द्वितीय में 18, तृतीय में 12 और चतुर्थ में 15 मात्रायें होती हैं।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।4।।

प्रसंग – मूर्ख की विशेषता बताते हुये भर्तृहरि का कहना है कि प्रचण्ड लहरों से व्याप्त समुद्र को तैरना तथा अन्य उस प्रकार के कठिन कार्य करना सम्भव है किन्तु मूर्ख के चित्त को प्रसन्न करना सर्वथा असम्भव है।

अन्वयः – मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् मणिं प्रसह्य उद्धरेत्। प्रचलत् - ऊर्मिमाला - आकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्। कोपितं भुजङ्गम् अपि पुष्पवत् शिरसि धारयेत्। तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

शब्दार्थ – मकरवक्त्र-दंष्ट्रान्तरात् = मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से, मणिम् = रत्न को, प्रसह्य = शक्तिपूर्वक, उद्धरेत् = छुड़ा ले, प्रचलत्-ऊर्मिमाला-आकुलम् = चपल लहरों की पंक्तियों से व्याप्त भयंकर, समुद्रम् अपि = सागर को भी, सन्तरेत् = पार कर ले। कोपितम् = क्रोधित हुए, भुजङ्गम् अपि = साँप को भी, पुष्पवत् = पुष्प की तरह, शिरसि = सिर पर, धारयेत् = रख ले। तु = किन्तु, प्रतिनिविष्ट-मूर्खजनचित्तम् = दुराग्रही एवं मूर्ख व्यक्ति के मन को, न आराधयेत् = सन्तुष्ट करने का प्रयास न करें।

सन्धि – ऊर्मिमालाकुलम् – ऊर्मिमाला + आकुलम् (दीर्घ सन्धि)

पुष्पवद्धारयेत् – पुष्पवत् + धारयेत् (जश्त्व सन्धि)

समास – मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्– मकरस्य वक्त्रं, मकरवक्त्रं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मिन् दंष्ट्राः मकरवक्त्रदंष्ट्राः (सप्तमी तत्पुरुष समास), मकरवक्त्रदंष्ट्रानाम् अन्तरं मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मात् ।

प्रचलदूर्मिमालाकुलम् – प्रचलन्त्यः ताः ऊर्मयः च प्रचलदूर्मयः (कर्मधारय) प्रचलदूर्मीनां मालाः प्रचलदूर्मिमालाः (षष्ठी तत्पुरुष समास) ताभिः मालाभिः आकुलम् (तृतीया तत्पुरुष समास) ।

प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् – प्रतिनिविष्टः च असौ मूर्खजनः, प्रतिनिविष्टमूर्खजनः (कर्मधारय समास) प्रतिनिविष्टमूर्खजनस्य चित्तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अनुवाद – मनुष्य चाहे तो मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से मणि को जबरदस्ती निकाल सकता है। बड़ी-बड़ी लहरों से परिपूर्ण समुद्र को भी पार कर सकता है। क्रोध से उद्दीप्त सर्प को फूल की तरह अपने सिर पर धारण कर सकता है। किन्तु जिसके मन में कोई बात बैठ गई है (जो शंका से भर गया है), ऐसे हठी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकता है।

छन्द – पृथ्वी।

लक्षणम् – जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

अर्थात् पृथ्वी छन्द के प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु होते हैं तथा आठवें और नौवें वर्ण पर विराम होता है।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटंछशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।5।।

प्रसंग – मूर्ख की दुराराध्यता को पुनः पुष्ट करते हुये कविवर भर्तृहरि का कहना है कि बालू से तेल निकालना, मृगतृष्णा में पानी प्राप्त करना, खरगोश के सींग प्राप्त करना जैसे दुस्साध्य कार्य सम्भव हैं किन्तु मूर्ख को प्रसन्न करना सर्वथा असम्भव है।

अन्वयः – यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत, पिपासार्दितः च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणम् अपि आसादयेत्, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं तु न आराधयेत्।

शब्दार्थ – यत्नतः = परिश्रम से, पीडयन् = निचोड़ते हुये, सिकतासु = बालू के कणों में, अपि = भी, तैलम् = तेल को, लभेत = प्राप्त कर लें, च = और, पिपासार्दितः = प्यास से तड़पता हुआ, मृगतृष्णिकासु = मृगमरीचिकाओं में, सलिलम् = जल को, पिबेत् = पी सकता है, पर्यटन् = भ्रमण करता हुआ, कदाचित् = कभी, शशविषाणम् = खरगोश के सींग को, आसादयेत् = प्राप्त कर सकता है, तु = किन्तु, प्रतिनिविष्ट-मूर्खजनचित्तम् = दुराग्रहशाली शंकालू मूर्ख के मन को, न आराधयेत् = प्रसन्न नहीं किया जा सकता है।

सन्धि –

पिबेच्च – पिबेत् + च (श्चुत्व सन्धि)

पिपासार्दितः – पिपासा + आर्दितः (दीर्घ सन्धि)

पर्यटंछशविषाणम् – पर्यटन् + शशविषाणम् (श्चुत्व-छत्व सन्धि)

समास –

मृगतृष्णिकासु – मृगाणां तृष्णा मृगतृष्णा (षष्ठी तत्पुरुष समास) तासु

शशविषाणम् – शशस्य विषाणम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

पिपासार्दितः – पिपासया आर्दितः (तृतीया तत्पुरुष समास)

प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् –प्रतिनिविष्टमूर्खजनस्य चित्तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अनुवाद – कोई भी मनुष्य परिश्रम करके बालू से तेल निकाल सकता है (जो कि असम्भव है)। प्यास से तड़पता हुआ व्यक्ति मृगमरीचिका में भी पानी पा सकता है (जो कि दुर्लभ है)। इधर-उधर भटकता हुआ व्यक्ति खरगोश के सींग पा सकता है (जो होता ही नहीं। इतने सब असम्भव कार्य हो सकते हैं)। किन्तु दुराग्रहशाली हठधर्मी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न करना कभी भी सम्भव नहीं है।

छन्द – पृथ्वी।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।।6।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि भर्तृहरि ने विविध दृष्टान्तों से स्पष्ट किया है कि मूर्ख को किसी भी प्रकार से सन्तुष्ट करना असम्भव है।

अन्वयः – यः सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः खलान् सतां पथि नेतुं वाञ्छति, असौ बालमृणालन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुमप्रान्तेन वज्रमणिं छेत्तुं सन्नह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुम् (च) ईहते (इव)।

शब्दार्थ – यः = जो मनुष्य, सुधास्यन्दिभिः = अमृत बरसाने वाली, सूक्तैः = सदुपयोगी उक्तियों द्वारा, खलान् = दुष्टों को, पथि = रास्ते पर, नेतुम् = लाने की, वाञ्छति = इच्छा रखता है, असौ = वह मनुष्य, बालमृणालतन्तुभिः = कमल के कोमल रेशों से, व्यालम् = पागल हाथी को, रोद्धुम् = रोक पाने का, समुज्जृम्भते = प्रयास करता है, शिरीषकुसुमप्रान्तेन = कोमल शिरीष पुष्प की नोंक से, वज्रमणिम् = कठोर रत्न को (हीरे को), छेत्तुम् = छेदने का, सन्नह्यते = अभ्यास करता है, मधुबिन्दुना = शहद की बूँद से, क्षाराम्बुधेः = सागर के नमकीन जल को, माधुर्यम् = मीठा, रचयितुम् = बनाना, ईहते = चाहता है।

सन्धि –

तन्तुभिरसौ – तन्तुभिः + असौ (विसर्ग सन्धि)

क्षाराम्बुधेरीहते – क्षार + अम्बुधेः (दीर्घ सन्धि), क्षाराम्बुधेः+ ईहते (विसर्ग सन्धि)

समास –

सुधास्यन्दिभिः – सुधां स्यन्दन्ते तच्छीलानि सुधास्यन्दीनि, तैः (तृतीया तत्पुरुष समास)

शिरीषकुसुमप्रान्तेन – शिरीषकुसुमस्य प्रान्तः शिरीषकुसुमप्रान्तः, तेन (तृतीया तत्पुरुष समास)

मधुबिन्दुना – मधोः बिन्दुः मधुबिन्दुः, तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास)

क्षाराम्बुधेः – क्षारश्चासौ अम्बुधिश्च क्षाराम्बुधिः (कर्मधारय समास) तस्य

अनुवाद – जो मनुष्य अमृत बरसाने वाली सदुपयोगी उक्तियों द्वारा दुष्टों को सही रास्ते पर लाने की इच्छा रखता है, उसका प्रयास वैसे ही है जैसे कोई मनुष्य कमल के कोमल रेशों से पागल हाथी को रोकने का प्रयास करता है। जैसे कोई कोमल शिरीष के पुष्प की नोंक से कठोर रत्न को (हीरे को) छेदने का अभ्यास करता है या जैसे कोई शहद की बूँद से सागर के खारे जल को मीठा बनाना चाहता है। अर्थात् जैसे ये सभी कार्य दुष्कर या असम्भव हैं, वैसे ही दुर्जनों को सदुक्तियों या मधुर वाणी से सन्मार्ग पर लाना असम्भव है।

छन्द – शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् – सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु होता है तथा सात-सात वर्णों पर विराम होता है।

15.2.4 मूर्खों का गुण

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।7।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में भर्तृहरि ने विद्वानों की सभा में मौन को मूर्ख का अलंकार कहा है।

अन्वयः – विधात्रा अपण्डितानां स्वायत्तम् एकान्तगुणम् अज्ञतायाः छादनं मौनं विनिर्मितम्। (इदं) सर्वविदां समाजे विशेषतः (अपण्डितानाम्) विभूषणम्।

शब्दार्थ – विधात्रा = विधाता (ब्रह्मा जी) ने, अपण्डितानाम् = मूर्खों के लिए, स्वायत्तम् = स्वतन्त्र, एकान्तगुणम् = अत्यधिक गुणों वाली, अज्ञतायाः = अज्ञानता का, छादनम् = आवरण, मौनम् = मौन को, विनिर्मितम् = निर्मित किया है, सर्वविदाम् = ज्ञाताओं के, समाजे = समाज में, विशेषतः = विशेष रूप से, विभूषणम् = आभूषण।

समास –

अपण्डितानाम् – न पण्डिताः अपण्डिताः (नञ् तत्पुरुष समास) तेषाम्

सर्वविदाम् – सर्वं विदन्तीति सर्वविदः (नित्य समास) तेषाम्

अनुवाद – विधाता (ब्रह्मा जी) ने मूर्खों के लिए स्वतन्त्र अत्यधिक गुणों वाली अज्ञानता का आवरण करने के लिये मौन को निर्मित किया है, ज्ञाताओं के समाज में विशेष रूप से यह आभूषण है। अर्थात् विद्वानों के समक्ष मूर्खों का मौन रहना उनका एक आभूषण है।

छन्द – उपजाति।

लक्षणम् – अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्द के मिश्रण को उपजाति छन्द कहते हैं।

15.2.5 अल्पज्ञता की भयंकरता

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।8।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में नीतिकार ने स्पष्ट किया है कि विद्वानों के समागम से अल्पज्ञ मनुष्य के अहंकार का विनाश होता है।

अन्वय – यदा अहं किंचिज्ज्ञः द्विपः इव मदान्धः समभवं तदा सर्वज्ञः अस्मि इति मम मनः अवलिप्तम् अभवत् (किन्तु) यदा बुधजनसकाशात् किंचित् किंचित् अवगतं तदा अहं मूर्खः अस्मि इति मे मदः ज्वरः इव व्यपगतः।

शब्दार्थ – यदा = जब, अहम् = मैं, किंचिज्ज्ञः = अल्पज्ञानी था, द्विपः इव = हाथी के समान, मदान्धः = मदमत्त (मद से अन्धा), समभवम् = हो गया था, तदा = तब, सर्वज्ञः = सब कुछ जानने वाला, अस्मि = हूँ, इति = इस प्रकार, मम = मेरा, मनः = चित्त, अवलिप्तम् = गर्वित, अभवत् = हुआ, यदा = जब, बुधजनसकाशात् = विद्वानों के समागम से, किंचित् किंचित् = कुछ-कुछ, अवगतम् = सीखा, तदा = तब, अहं मूर्खः अस्मि = मैं तो अज्ञानी (मूर्ख) हूँ, इति = इस प्रकार, मे = मेरा, मदः = घमण्ड, ज्वरः इव = ज्वर की तरह, व्यपगतः = दूर हो गया।

सन्धि –

मदान्धः – मद + अन्धः (दीर्घ सन्धि)

सर्वज्ञोऽस्मि – सर्वज्ञः + अस्मि (विसर्ग सन्धि)

ज्वर इव – ज्वरः + इव (विसर्ग सन्धि)

समास –

किंचिज्ज्ञः – किंचित् जानाति इति किंचिज्ज्ञः (नित्य समास)

सर्वज्ञः – सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः (नित्य समास)

अनुवाद – जब मैं अल्पज्ञानी था, मुझे शास्त्रों का अधिक ज्ञान नहीं था तब मैं हाथी के समान मदमत्त (मद से अन्धा) हो गया था। उस समय, सब कुछ जानने वाला हूँ, इस प्रकार मेरा चित्त गर्वित हुआ अर्थात् शास्त्रों का अल्पज्ञान पाकर मैं अहंकार के वशीभूत होकर अपने को सब कुछ जानने वाला हूँ ऐसा समझने लगा था, किन्तु जब विद्वानों के समागम से कुछ-कुछ सीखने लगा तब मुझे ज्ञान हुआ कि मैं तो अज्ञानी (मूर्ख) हूँ, इस प्रकार मेरा घमण्ड ज्वर की तरह दूर हो गया (मेरा ज्ञानी होने का अहंकार विद्वानों के सम्पर्क में आने से चूर-चूर हो गया)।

छन्द – शिखरिणी।

लक्षणम् – रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, मगण, लघु और गुरु होता है तथा छठें और ग्यारहवें वर्ण पर विराम होता है।

15.2.6 क्षुद्र प्राणी की अज्ञानता

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसप्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य विशङ्कते
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुःपरिग्रहफल्गुताम्।।9।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कविवर भर्तृहरि ने प्रतिपादित किया है कि नीच कर्म करते हुये अधम व्यक्ति को उत्तम व्यक्तियों से भी शंका होती है।

अन्वयः – श्वा कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जगुप्सितं निरामिषं नरास्थि निरुपमरसप्रीत्या खादन् पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य विशङ्कते हि क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न गणयति।

शब्दार्थ – श्वा = कुक्कुर (कुत्ता), कृमिकुलचितम् = कीड़ों के समूह से परिपूर्ण, लालाक्लिन्नम् = मुँह की लार से गीले, विगन्धि = दुर्गन्धयुक्त, जुगुप्सितम् = घृणित, निरामिषम् = बिना मांस के, नरास्थि = मनुष्य की अस्थि (हड्डी) को, निरुपमरसप्रीत्या = अत्यधिक स्वादिष्ट की तरह, खादन् = खाता हुआ, पार्श्वस्थम् = समीप में स्थित, सुरपतिम् अपि = देवराज इन्द्र को भी, विलोक्य = दृष्टिगत कर, विशङ्कते = शंकायुक्त होता है, हि = क्योंकि, क्षुद्रो जन्तुः = अधम प्राणी, परिग्रहफल्गुताम् = प्राप्त की हुई वस्तुओं की निस्सारता को, न गणयति = विचारता नहीं है।

सन्धि –

नरास्थि – नर + अस्थि (दीर्घ सन्धि)

समास –

कृमिकुलेन – कृमीनां कुलं कृमिकुलं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन

निरामिषम् – निर्गतम् आमिषं यस्मात् (बहुव्रीहि समास) तत्

नरास्थि – नरस्य अस्थि (षष्ठी तत्पुरुष समास)

निरुपमरसप्रीत्या – निरुपमो रसः यस्य सः निरुपमरसः (बहुव्रीहि समास) तस्मिन् निरुपमरसे, निरुपमरसे या प्रीतिः निरुपमरसप्रीतिः (सप्तमी तत्पुरुष समास) तया

सुरपतिम् – सुराणां पतिः सुरपतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तम्

परिग्रहफल्गुताम् – परिग्रहस्य फल्गुता परिग्रहफल्गुता (षष्ठी तत्पुरुष समास) ताम्

फल्गुता – फलं गतं यस्मात् सः फल्गुः, तस्य भावः

अनुवाद – कुक्कुर (कुत्ता) कीड़ों के समूह से परिपूर्ण, मुँह की लार से गीले दुर्गन्धयुक्त घृणित मांस रहित मनुष्य की अस्थि (हड्डी) को अत्यधिक स्वादयुक्त की तरह खाता हुआ समीप में स्थित देवराज इन्द्र को भी दृष्टिगत कर शंकायुक्त होता है कि कहीं यह मेरा भोजन तो नहीं छीन लेगा। क्योंकि अधम जीव प्राप्त की हुई वस्तुओं की अनुपयोगिता का विचार नहीं करता है अथवा ध्यान नहीं देता है।

छन्द – हरिणी।

लक्षणम् – रसयुगहयैः न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु तथा गुरु होते हैं। छठें, दसवें तथा अन्तिम वर्ण में विराम होता है।

15.2.7 विवेकहीन लोगों का पतन

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।10।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में विवेक रहित व्यक्तियों के क्रमिक अधःपतन को स्पष्ट किया गया है।

अन्वयः – इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम् उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिम्, अवनेः च अपि जलधिम्, अधोऽधः स्तोकं पदम् उपगता अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति।

शब्दार्थ – इयम् = यह, गङ्गा = गंगा नदी, स्वर्गात् = स्वर्गलोक से, शार्वम् = भगवान् शिव के, शिरः = सिर पर, पशुपतिशिरस्तः = शिवजी के सिर से (जटा से), क्षितिधरम् = पर्वत पर, उत्तुङ्गात् = ऊँचाई वाले, महीध्रात् = पर्वत (हिमालय) से, अवनिम् = धरती पर, अवनेः = धरती से, च अपि = और भी, जलधिम् = सागर में, अधोऽधः = नीचे-नीचे, स्तोकम् = तुच्छ, पदम् = पद को, उपगता = पहुँची, अथवा, विवेकभ्रष्टानाम् = अच्छे-बुरे को न जानने वालों का, शतमुखः = हजारों प्रकार से, विनिपातः = पतन (अधोगति की प्राप्ति), भवति = होता है।

सन्धि –

महीध्रादुत्तुङ्गात् – महीध्रात् + उत्तुङ्गात् (जश्त्व सन्धि)

उत्तुङ्गादवनिम् – उत्तुङ्गात् + अवनिम् (जश्त्व सन्धि)

अवनेश्च – अवनेः + च (अवनेस् + च, अवनेश् + च) (विसर्गसन्धि, श्चुत्व सन्धि)

चापि – च + अपि (दीर्घ सन्धि)

अधोऽधः – अधः + अधः (विसर्ग सन्धि, पूर्वरूप सन्धि)

गङ्गेयम् – गङ्गा + इयम् (गुण सन्धि)

समास –

पशुपतिशिरस्तः – पशूनां पतिः पशुपतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पशुपतेः शिरः पशुपतिशिरः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मात्

क्षितिधरम् – धरतीति धरः (कृद्वृत्तिः) क्षितेः धरः क्षितिधरः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तम्

विवेकभ्रष्टानां – विवेकात् भ्रष्टाः विवेकभ्रष्टाः (पंचमी तत्पुरुष समास) तेषाम्

शतमुखः – शतं मुखानि यस्य सः (बहुव्रीहि समास)

अनुवाद – यह गंगा नदी स्वर्गलोक से भगवान् शिव के सिर पर, शिवजी के सिर से (जटा से) पर्वत पर और ऊँचाई वाले पर्वत (हिमालय) से भी धरती पर इसी प्रकार क्रमशः नीचे-नीचे होती हुयी धरती से भी नीचे सागर में अधोगति को पहुँची। अतः यह उचित ही है कि अच्छे-बुरे को न जानने वालों का हजारों प्रकार से पतन निश्चित ही होता है अर्थात् अविवेकी मनुष्य सर्वदा ही अधोगति को प्राप्त होता है।

छन्द – शिखरिणी।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

बोध प्रश्न–

1. नीचे दिये गये कथनों में से सत्य (√) तथा असत्य (x)कथन का चयन कीजिए–

i) भर्तृहरि ने नीतिशतक के मंगलाचरण में पर ब्रह्म को नमस्कार किया है। ( )

ii) नीतिशतक का मंगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है । ( )

iii) नीतिशतक में नौ पद्धतियाँ हैं। ( )

iv) हठी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न किया जा सकता है। ( )

v) अधम जीव प्राप्त की हुई वस्तुओं की अनुपयोगिता का विचार नहीं करता है।( )

vi) विवेकहीनों का विनिपात सैकड़ों प्रकार से होता है। ( )

अभ्यास प्रश्न–

1. ब्रह्मा भी किस मनुष्य को प्रसन्न नहीं कर सकता ?
2. 'प्रचलदूर्मिमालाकुलम्' का समास विग्रह बताइये ।
3. मधुरसूक्तियों से किसे मार्ग पर नहीं लाया जा सकता ?
4. मौन किसका आभूषण है ?
5. 'लभेत सिकतासु तैलमपि' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

15.3 सारांश

नीतिशतक के प्रारम्भ में भर्तृहरि ने प्रकाशस्वरूप परब्रह्म की वन्दना की है। तदनतर उन्होंने काम की निस्सारता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है कि अज्ञव्यक्ति को बिना किसी परिश्रम के प्रसन्न किया जा सकता है तथा विशिष्ट विद्वान् को कुछ परिश्रम के साथ भी समझाया जा सकता है किन्तु स्वल्प ज्ञान से भयंकर मूर्ख को समझा पाना सम्भव नहीं है। कोई भी व्यक्ति कठिन से कठिन कार्य कर सकता है किन्तु दुराग्रही मूर्ख को प्रसन्न नहीं कर सकता । लोक का उदाहरण देते हुये भर्तृहरि कहते हैं कि कोई बालू से तेल भी निकाल सकता है, मृगमरीचिका में पानी भी पा सकता है, इधर-उधर घूमता हुआ खरगोश का सींग भी पा सकता है किन्तु हठी मूर्ख को प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख की निन्दा करते हुये उन्होंने उसे विद्वानों की सभा में मौन रहने का ही सुझाव दिया है। 'अल्पविद्या भयंकरी' के सिद्धान्त को उन्होंने स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि जब मैं अल्पज्ञ था तब मैं हाथी की तरह मतवाला हो रहा था कि मेरे समान और कोई विद्वान् नहीं है किन्तु जब विद्वानों के पास जाकर मैंने कुछ ज्ञान अर्जित किया तब मुझे पता चला कि मैं मूर्ख हूँ और मेरा अहंकार ज्वर की तरह उतर गया। उन्होंने मूर्ख की अनेक प्रकार से निन्दा करते हुये यह शिक्षा दी है कि हमें कभी भी मूर्खता का आचरण नहीं करना चाहिये।

15.4 शब्दावली

दिक्काल = पूर्व आदि दिशायें तथा भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल ।

चिन्मात्रमूर्तये = चैतन्य विग्रह वाले ।

स्वानुभूत्येकमानाय = अनुभव मात्र से गम्य ।

अन्यसक्तः = दूसरे पर आसक्त है।

ज्ञानलवदुर्विदग्धम् = अल्प ज्ञान वाले।

प्रसह्य = शक्तिपूर्वक।

सुधास्यन्दिभिः = अमृत बरसाने वाली।

किंचिज्ज्ञः = अल्पज्ञानी ।

बुधजनसकाशात् = विद्वानों के समागम से।

कृमिकुलचितम् = कीड़ों के समूह से परिपूर्ण।

परिग्रहफल्गुताम् = प्राप्त की हुई वस्तुओं की निस्सारता को।

पशुपतिशिरस्तः = शिवजी के शिर से।

उत्तुङ्गात् = ऊँचाई वाले।

विनिपातः = पतन (अधोगति की प्राप्ति)।

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, सम्पादकः – पु. गोपीनाथ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2010।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001
3. वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
4. अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड़, दिल्ली, 2011।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009।

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–

1. (i) सही (ii) गलत (iii) गलत
   (iv) गलत (v) सही (vi) सही

अभ्यास प्रश्न–

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे।